इकाई–4 चित्त वृत्तियों के निरोध के उपाय

4.1 प्रस्तावना :

अब तक की ईकाइयों में आपने सबसे पहली इकाई में योग की परिभाषा पढ़ी जिसमें आपने "चित्त वृत्तियों के निरोध को ही योग कहते हैं।" इस परिभाषा को प्रमुखता से पढ़ा इसी परिभाषा को आधार बनाते हुए दूसरी ईकाई में आपने चित्त के विषय पर विस्तृत जानकारी हासिल की। तीसरी इकाई में फिर आपके साथ हमने चित्त की वृत्तियों पर चर्चा की। और अब चतुर्थ इकाई में हम चर्चा करेंगे की इन चित्त की वृत्तियों का निरोध अर्थात् इन्हें कैसे रोका जा सकता है।

तृतीय इकाई में आपने चित्त की पांच वृत्तियों प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति को जाना आपने यह भी जाना की ये चित्त वृत्तियां क्लिष्ट और अक्लिष्ट दोनों प्रकार की होती है। क्लिष्ट वृत्तियाँ क्लेश उत्पन्न करती है। अतः यह स्वभाव से ही निरोध के लायक है। किन्तु अक्लिष्ट वृत्तियों का भी निरोध असम्प्रज्ञात समाधि के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है। चूकि यें अक्लिष्ट वृत्तियाँ धीरे–धीरे क्लिष्ट वृत्तियों के प्रवाह में बहकर क्लिष्ट ही हो जाती है। अतः यह दोनों प्रकार की वृत्तियाँ ही निरोध करने योग्य हैं।

अब प्रश्न उठता है, कि इन चित्त की वृत्तियों का निरोध किस प्रकार किया जाये। योग दर्शन की यही प्रमुख समस्या है। इसी समस्या का निराकरण महर्षि पतंजलि ने योग सूत्र में किया है। महर्षि पतंजलि ने साधकों की योग्यता और क्षमता के अनुसार चित्त वृत्ति निरोध के विभिन्न उपाय बताये हैं। चूकि योग साधक अपनी मानसिक व शारीरिक क्षमता के अनुसार ही योग्य साधना कर सकता है। अतः महर्षि पतंजलि ने साधकों के विकल्प हेतु कई वृत्ति निरोध के उपायों की चर्चा की है। जिस साधक को जो तरीका सुलभ लगता हो वह उसे अपना कर चित्त की वृत्तियों का निरोध कर सकता है। यहाँ पर हम महर्षि पतंजलि द्वारा बताये गये वृत्ति निरोध के दस उपायों पर चर्चा करेगें ये दस उपाय निम्न हैं – (1) अभ्यास (2) वैराग्य (3) ईश्वर प्रणिधान (4) भावना चतुष्टय (5) प्राणायाम (6) विषयवती प्रवृत्ति (7) ज्योतिष्मती प्रवृत्ति (8) वीतराग विषयक चित्त (9) स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बन (10) यथाभिमत् ध्यान। महर्षि पतंजलि द्वारा बताये गये ये सभी दस उपाय योग सूत्र के समाधिपाद में व्यवस्थित है। जिन पर अब हम विस्तृत चर्चा करेंगे।

4.2 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- चित्त वृत्ति निरोध के उपायों को विस्तार से जान सकेंगे।
- चित्त वृत्ति निरोध के उपायों के व्यवहारिक पक्ष से अवगत हो सकेंगे।
- साधकों के लिए उपयुक्त चित्त वृत्ति निरोध के उपायों को अलग–अलग प्रभाव क्रम से जान सकेगें।

4.3 चित्त वृत्ति निरोध के उपाय :

अब तक की ईकाइयों में हमने योग की परिभाषा, चित्त और चित्त वृत्तियों पर विस्तार से चर्चा की। इस पूरी चर्चा के बाद हमारे समक्ष एक सबसे प्रमुख समस्या उभर कर आती है, कि चित्त में उठने वाली वृत्ति तरंगे ही योग मार्ग की प्रमुख बाधक है। यदि इन वृत्तियों को नष्ट कर दिया जाये तो योग को प्राप्त किया जा सकता है। इस मूल समस्या के निराकरण के लिए महर्षि –पतंजलि ने वृत्ति निरोध के उपायों पर विस्तृत जानकारी योग सूत्र के प्रथमपाद (समाधिपाद) में दी है। वहाँ पर उन्होंने विभिन्न क्षमता वाले साधकों के अनुसार

वृत्ति निरोध के उपायों पर चर्चा की है। जिन प्रमुख दस उपायों का वर्णन महर्षि ने योगसूत्र में किया है, उन्हीं को विस्तार से यहाँ पर समझाया जायेगा। उन दस प्रकारों को आप प्रस्तावना में पढ़ आये हैं।

योगदर्शन परम्परा में योग साधकों को तीन श्रेणीयों के अन्तर्गत श्रेणीबद्ध किया गया है। प्रथम प्रकार के साधक उत्तम श्रेणी के होते हैं। दूसरे प्रकार के मध्यम श्रेणी के तथा तीसरे प्रकार के योगी अधम श्रेणी के होते हैं। उत्तम श्रेणी के साधक वे होते हैं, जो पूर्वजन्म से ही योग मार्ग पर बहुत आगे निकल चुके होते हैं, और वर्तमान जन्म में पूर्वजन्म में छोड़ी गयी योग साधना को लक्ष्य तक पहुंचाने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। जैसे रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द आदि इसी श्रेणी के योगी है। इन उत्तम श्रेणी के साधकों के लिए अभ्यास और वैराग्य ही चित्त वृत्तियों के निरोध के लिए काफी है। ये योगी मात्र पूर्वजन्म के कर्मो के संग्रहित संस्कारों को भोगने के लिए जीवन–यापन करते हैं। संस्कारों के क्षीण होते ही इन्हें योग के परम् लक्ष्य असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति हो जाती है।

उत्तम श्रेणी के पश्चात् मध्यम श्रेणी के योग साधकों का क्रम आता है, ये वे साधक है, जो वर्तमान जीवन में योग साधना का प्रारम्भ करते हैं। इनके मन में आत्मबोध की जिज्ञासा जाग्रत होती है। जिसको प्राप्त करने के लिए यह निरन्तर प्रयत्न करते रहते हैं। ऐसे योगीयों के लिए क्रिया योग का मार्ग बताया गया है। हालांकि यहाँ पर क्रियायोग के एक ही पहलू ईश्वर प्रणिधान पर चर्चा कि जायेगी। सबसे अन्त में अधम श्रेणी के योग साधक आते है, जिनका चित्त अभी पूर्ण रूप से संस्कारों से मलिन है, किन्तु उनके मन में इस संस्कार रूपी मल को मुक्त करने की प्रबल इच्छा है। अतः योग शास्त्र ऐसे योग साधकों के लिए अष्टांग योग का उपदेश करता है। यहाँ पर शीर्षक विशेष को ध्यान में रखते हुए मात्र प्राणायाम और ध्यान पर ही चर्चा की जायेगी। अष्टांग योग के अन्य अंगो पर अन्यत्र चर्चा होगी।

महर्षि पतंजलि द्वारा वर्णित चित्त वृत्ति निरोध के उपाय उसी प्रकार है, जिस प्रकार पहली कक्षा में पढ़ने वाले बच्चे को पांचवी कक्षा के प्रश्न का उत्तर देने को कहा जाये तो वह उन प्रश्नों को समझ ही नहीं पायेगा। उसी प्रकार अधम श्रेणी के योग साधक उत्तम श्रेणी के साधकों के लिए निहित वृत्ति निरोध के उपायों को व्यवहार में नहीं ला सकते, उन्हें वृत्तियों के निरोध के लिए अपने अनुकूल साधनों का ही प्रयोग करना होगा।

महर्षि पतंजलि द्वारा दी गयी योग की परीभाषा को विद्वान इस प्रकार स्पष्ट करते हैं, कि यदि तामसिक और राजसिक वृत्तियों के निरोध के पश्चात् मात्र सात्विक वृत्ति भी शेष रह जाती है, तो भी योग की प्रथम अवस्था जिसे सम्प्रज्ञात योग का नाम दिया गया प्राप्त हो जाती है। किन्तु योग का परम लक्ष्य यह नहीं है। योग का परम् लक्ष्य असम्प्रज्ञात समाधि है। और असम्प्रज्ञात समाधि में सभी प्रकार की वृत्तियों का निरोध हो जाता है। इस इकाई से पूर्व की इकाई में हमने चित्त की वृत्तियों के दो स्वरूपों क्लिष्ट और अक्लिष्ट पर चर्चा की। ये दोनों ही वृत्ति के स्वरूप निरोध किये जाने योग्य हैं। क्लिष्ट तो क्लेश कारक है, इसलिए निरोध के योग्य है। किन्तु अक्लिष्ट वृत्ति भी क्लिष्ट के प्रवाह में बहकर क्लिष्ट हो जाती है, जिससे यह भी क्लेशों को उत्पन्न करती है। अतः यह भी निरोध के योग्य है।

इस प्रकार सम्पूर्ण वृत्तियों का निरोध ही योग का अन्तिम लक्ष्य है। और इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए ही महर्षि पतंजलि ने निरोध के उपायों का उपदेश दिया है। इन्हीं उपायों को हम क्रम से चर्चा कर विषय का विस्तृत ज्ञान प्राप्त करेंगे। तो आइये चित्त वृत्तियों के निरोध पर विस्तार से चर्चा प्रारम्भ करते हैं।

अभ्यास प्रश्न भाग–1

1. अति लघु उत्तरीय प्रश्न
   - (क) योग साधकों की कितनी श्रेणीयां है? नामोल्लेख करें।
   - (ख) उत्तम श्रेणी के साधकों के क्या लक्षण हैं ?
   - (ग) योग का अंतिम लक्ष्य क्या है?

4.3.1 अभ्यास :

हम यह कह आये है, कि उत्तम श्रेणी के योग साधकों के चित्त को निर्मल करने के उपाय के अन्तर्गत् महर्षि पतंजलि ने अभ्यास और वैराग्य को रखा है, जिसका वर्णन समाधिपाद के 12वें सूत्र में किया गया है।

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः।। (योग सूत्र 1/12)

इस सूत्र के भाष्य में महर्षि–व्यास ने चित्त को दो धाराओं में बहने वाली एक नदी की संज्ञा दी है जिसकी एक धारा विषय भोगों का वहन करती है, और दूसरी धारा विवेक को। प्रायः सामान्यवस्था में विवेक को वहन करने वाली धारा क्षीण होती है, और विषयों का वहन करने वाली धारा प्रबल होती है। किन्तु जब योग साधक अभ्यास और वैराग्य का आलम्बन लेता है, तो वैराग्य के द्वारा विषयों का वहन करने वाली धारा को बन्द कर दिया जाता है, और अभ्यास के द्वारा विवेक को वहन करने वाली धारा को प्रबल किया जाता है। अर्थात् अभ्यास और वैराग्य के संयुक्त प्रयास के द्वारा ही चित्त वृत्तियों का निरोध किया जा सकता है तो आइये सबसे पहले अभ्यास पर चर्चा करते हैं। अब सबसे पहले प्रश्न उठता है अभ्यास क्या है? इसका उत्तर महर्षि पतंजलि देते हैं –

तत्रस्थितौ यत्नोऽभ्यासः।। (योगसूत्र 1/13)

अर्थात् स्थिति के निमित्त प्रयत्न करना अभ्यास है। कहने का तात्पर्य है, चित्त का निर्बाध रूप से एकाग्र बना रहना ही चित्त की स्थिति है। और यह निर्बाध एकाग्रता योगागों के अनुष्ठान से प्राप्त होती है। इस एकाग्रता की अवस्था में प्रथमतः राजस और तामस वृत्तियों का लोप हो जाता है, और मात्र सात्विक वृत्ति शेष रह जाती है, जिसे सात्त्विक एकाग्रता कहते हैं। और जब योगागों का अनुष्ठान और प्रगाढ़ हो जाता है, तो यह सात्त्विक एकाग्रता भी लुप्त हो जाती है। फलतः असम्प्रज्ञात योग की प्राप्ति होती है।

योग सिद्धान्त चन्द्रिका नामक ग्रन्थ में अभ्यास को परिभाषित करते हुए उसके लेखक नारायण तीर्थ कहते हैं – उत्साह, साहस एवं धैर्य के साथ अध्यात्म विद्या का अध्ययन महत्सेवा तथा यम, नियमादि का पालन करना अभ्यास है, इस प्रकार बाहरी विषयों को ओर स्वभावतः दौड़ने वाले चित्त पर नियन्त्रण रखने की भावना उत्साह कहलाती है। तथा साध्य असाध्य पर विचार किये बिना ही तत्काल सात्त्विक कार्य में प्रवृत्त होना साहस कहलाता है। व प्रयत्न के सफल होने का पूरा विश्वास चाहे प्रयत्न इस जन्म में न सही अगले जन्म में सफल हो ऐसी भावना का नाम धैर्य है। अभी पूर्व में अभ्यास की परिभाषा में तीन शब्द आये है, जिनका पालन करना अभ्यास कहा गया है। पहला अध्ययन इसका तात्पर्य, ऐसे ग्रन्थों के अध्ययन करने से है जो अध्यात्म विषयों को प्रकाशित करें। दूसरा शब्द महात्सेवा था,

इसका तात्पर्य सद्‌गुरु तथा संन्यासियों की सेवा करना है। तीसरा शब्द यम–नियमादि था, इसका विस्तृत वर्णन अन्यत्र किया जायेगा।
अभ्यास थोड़े समय तक या रूक–रूक कर अनिच्छा के साथ करने से फलवान् नहीं होता बल्कि अभ्यास तो आचरण में होना चाहिए तथा जन्म–जन्मान्तरों तक किये जाने योग्य है। यह अविरल गति से तथा उत्साह के साथ किया जाता हैं महर्षि पतंजलि अभ्यास कैसा होना चाहिए इसके विषय पर कहते हैं – "वह (अभ्यास) तो दीर्घ कालपर्यन्त, नैरन्तर्य (निरन्तरता) तथा सत्कार सहित किया जाने पर दृढ़ भूमि होता है।" (यो. सू. 1/14)
दीर्घकाल से तात्पर्य लम्बे समय से है, यह लम्बा समय सीमा रहित है, यह कई माह, कई साल या कई जन्मों तक का भी हो सकता है। किसी एक जन्म में किये गये सत्कर्मो के फलस्वरूप अगला जन्म श्रेष्ठतर प्राप्त होगा जिसमें अभ्यास और प्रगाढ़ होता है। अभ्यास में नैरन्तर्य (निरन्तरता) भी होनी चाहिए। अर्थात् अभ्यास लगातार व्यवधान रहित करते रहना चाहिए। जिस प्रकार तेल की धारा लगातार बिना टूटे एक धार में गिरती है। उसी प्रकार अभ्यास में भी निरन्तरता होनी चाहिए। ऐसा न हो की आज अभ्यास किया और फिर कुछ दिनों तक रहने दिया। इस प्रकार का व्यवधान युक्त अभ्यास फलिभूत नहीं होता। अभ्यास को दृढ़ करने के लिए निरन्तरता आवश्यक है। अभ्यास का आचरण सत्कार पूर्वक भी किया जाना आवश्यक है। सत्कार से तात्पर्य तप, ब्रह्मचर्य, विद्या और श्रद्धा से है। शीतोष्णादि ऋतुओं को सहना ही तप है, इन्द्रियों का निग्रह ही ब्रह्मचर्य है, ओंकार का जप और भगवत् नाम का जप विद्या है, तथा गुरुवाव्यों और शास्त्रों पर विश्वास करना श्रद्धा है।
इस प्रकार दीर्घकाल तक, निरन्तरता से और सत्कार पूर्वक अभ्यास का सेवन करने से ही अभ्यास दृढ़भूमि होता है, और इस दृढ़भूमि युक्त अभ्यास से ही चित्त की वृत्तियों का निरोध किया जा सकता है। अभ्यास के दृढ़भूमि हो जाने से लाभ यह होता है, कि समाधि बहुत शीघ्र भंग नहीं होती तथा देर तक बनी रहती है। चंचलता चित्त का आगन्तुक धर्म है, किन्तु उसका नैसर्गिक धर्म तो स्थिरता ही है, और चित्त को उसके नैसर्गिक धर्म की प्राप्ति में अभ्यास एक महत्त्वपूर्ण सहायक है। अर्थात् अभ्यास से चित्त की वृत्तियों का निरोध किया जा सकता है।
इस प्रकार आपने चित्त वृत्तियों के निरोध के लिए अभ्यास के महत्व को जाना और समझा। आइये अब वैराग्य को समझते हैं।

अभ्यास प्रश्न भाग–2

1. रिक्त स्थान की पूर्ति करें।
   (क) उत्तम श्रेणी के साधकों के लिए ....और ....श्रेष्ठ साधन है।
   (घ) स्थिति के निमित्त प्रयास करना .... है।
   (ग) प्रयत्न के सफल होने का पूरा विश्वास .... है।
2. एक शब्द में उत्तर दीजिए –
   (क) सद्‌गुरु तथा संन्यासियों की सेवा करना क्या है?
   (ख) शीतोष्णादि ऋतुओं को सहना क्या है?
   (ग) चित्त का नैसर्गिक धर्म क्या है?

4.3.2 वैराग्य :

वैराग्य शब्द का अर्थ है – विरागस्य भावः अर्थात् राग का विरोधी विराग है, और विराग का भाव वैराग्य है। महर्षि पतंजलि वैराग्य के विषय पर कहते हैं ।

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्।। (योग सूत्र 1/15)

अर्थात् "दृष्ट और आनुश्रविक विषयों से चित्त का तृष्णा रहित होना वशीकार संज्ञा नामक वैराग्य है।" इस वशीकार संज्ञा नामक वैराग्य को ही "अपर वैराग्य" कहा गया है।

यहाँ पर दो शब्द आये है, दृष्ट और आनुश्रविक ये विषयों के प्रकार हैं। अर्थात् जो विषय देखे हुए है, उन्हें दृष्ट और जो विषय सुने हुए हैं, उन्हें आनुश्रविक कहा गया है। यहाँ दृष्ट विषय है– स्त्रियाँ, अन्न, पान और ऐश्वर्य इन विषयों को ऐहिक भी कहा जाता है। आनुश्रविक विषय है। स्वर्गादि अमृतपान, आप्सरा भोगादि इन विषयों को पारलौकिक भी कहा जाता है। चुकिं ये विषय मृत्युलोक में दृश्य नहीं है। इनका वर्णन मात्र ग्रन्थों में ही मिलता है। अर्थात् ये विषय भोग मात्र सुने गये हैं।

इन दृष्ट और आनुश्रविक विषयों से चित्त का मुक्त होना वशीकार संज्ञा नामक वैराग्य है। किन्तु वशीकार तक पहुंचने से पूर्व वैराग्य की कुछ अन्य अवस्थायें भी है जो इस प्रकार हैं

प्रथम अवस्था → यतमान संज्ञा

द्वितीय अवस्था → व्यतिरेक संज्ञा

तृतीय अवस्था → एकेन्द्रिय संज्ञा

चतुर्थ अवस्था → वशीकार संज्ञा

यतमान संज्ञा : रागादि मल इन्द्रियों को विषयों में प्रवृत न कर सके अतः इसके लिए मैत्री करुणा आदि (इनके विषय में 4.3.4 भावना चतुष्टय शीर्षक में विस्तार से पढ़ेंगे) सात्विक भावों को अनुष्ठान करना ही यतमान संज्ञा वैराग्य कहलाता है।

व्यतिरेक संज्ञा : यतमान विराग के पश्चात् मन पर अवशिष्ट दोषों की निवृत्ति के लिए प्रयत्न करना ही व्यतिरेक वैराग्य है।

एकेन्द्रिय संज्ञा : परिपक्व दोष जब इन्द्रियों को विषयों में प्रवृत्त न कर सके परन्तु मात्र मन में तृष्णारूप में विद्यमान रहें तब एकेन्द्रिय वैराग्य होता है।

वशीकार संज्ञा : इस वैराग्य की चर्चा हम पहले कर आये हैं।

उक्त चारों प्रकारा के वैराग्य के समूह को अपर वैराग्य कहा गया है। किन्तु इस अपर वैराग्य से भी श्रेष्ठ वैराग्य है। जिसे "परवैराग्य" कहा जाता है। इस वैराग्य पर महर्षि पतंजलि कहते हैं।

तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्।। (यो०सू०1/16)

अर्थात् "पुरुष और प्रकृति के भेदज्ञान के उदय होने से जो सत्वगुण प्रकाशित होता है, उसके प्रति भी उपेक्षा का भाव "परवैराग्य" है।" परवैराग्य के उदय होने पर आत्मज्ञानी योगी इस प्रकार सोचने लगता है "जो प्राप्य था, वह प्राप्त हो चुका तथा क्षीण करने योग्य सभी विषय क्षीण किये जा चुके हैं। और संसार के सारे संक्रमण समाप्त हो चुके है।" यही

भाव ज्ञान की पराकाष्ठा है।अपरवैराग्य से प्राप्त विवेकख्याति सत्त्वगुणात्मिका होती है, और जब इस विवेकख्यति के प्रति भी वितृष्णा का भाव पैदा होता है तब परवैराग्य सिद्ध हो जाता है। यही वह स्थिति है जिसे सर्वचित्त वृत्ति निरोध कहा गया है। अर्थात् जब सभी चित्त वृत्तियों का निरोध हो जाता है।

इस प्रकार आपने समझा की समाधि की तरह ही वैराग्य भी दो प्रकार का होता है अपरवैरागय और परवैराग्य –

वैराग्य

अपरवैराग्य | परवैराग्य

वैराग्य चित्त वृत्तियों के विरोध का सबसे प्रभावि उपाय है, तथा यह क्रम से होने वाली एक अवस्था है। इस अवस्था को प्राप्त करने में अभ्यास बहुत सहायक होता है। अभ्यास की सहायता से ही वैराग्य की अवस्थाओं को प्राप्त करते करते उच्चतर अवस्था को अर्थात् परवैराग्य को प्राप्त किया जा सकता हे। जहाँ अपर वैराग्य के द्वारा राजसिक और तामसिक वृत्तियों का निरोध किया जाता है। वहीं परवैराग्य के द्वारा सात्विक वृत्ति का भी निरोध कर कैवल्यता को प्राप्त किया जाता है।

अभ्यास और वैराग्य का आचरण उच्च कोटी के योग साधकों के लिए बताया गया है। इन उच्च कोटी के साधकों में भी जिन साधकों का अभ्यास और वैराग्य के प्रति संवेग जितना तीव्र होगा उनका वृत्तिनिरोध की उतना ही तीव्र होगा और वृत्ति निरोध जितना तीव्र होगा योग के परम् लक्ष्य की प्राप्ति भी उतनी तीव्रता से होगी।

अभ्यास प्रश्न भाग –3

1. सत्य/असत्य बताए।

(क) राग का विरोधी विराग है। (सत्य/असत्य)

(ख) वशीकार ही अपर वैराग्य है। (सत्य/असत्य)

(ग) मन पर अवशिष्ट मल की निवृत्ति के लिए किया गया प्रयत्न ऐकेन्द्रिय संज्ञा वैराग्य हैं।

2. बहुविकल्पीय प्रश्न –

क) दृष्ट और आनुश्रविक विषयों से चित्त का मुक्त होना –

(अ) यतमान (स) एकेन्द्रिय

(ब) व्यतिरेक (द) वशीकार

(ख) पर वैराग्य किस समाधि का हेतु है?

(अ) असम्प्रज्ञात (स) विचारानुगत

(ब) सम्प्रज्ञात (द) आनन्दानुगत

4.3.3 ईश्वर प्रणिधान :

चित्त वृत्तियों के निरोध के लिए अगले उपाय के रूप में महर्षि पतंजलि ईश्वर प्रणिधान का वर्णन करते है।।

ईश्वर प्रणिधानाद्वा (यो०सू० 1/23)

अर्थात् "ईश्वर प्रणिधान से भी समाधि की प्राप्ति होती है।" ईश्वर प्रणिधान से शीघ्र ही चित्त वृत्तियों का निरोध हो जाता है, जिससे असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति होती है।
ईश्वर प्रणिधान का सम्बन्ध ईश्वर की भक्ति से है। अपने सभी कर्मों को ईश्वर के निमित्त समर्पित कर देना ही ईश्वर प्रणिधान है। उस प्रणिधान रूपी भक्ति से प्रसन्न होकर ईश्वर योग साधक को उसके इच्छित लक्ष्य अर्थात् असम्प्रज्ञात समाधि तक शीघ्र ही पहुचा देता है। ईश्वर का यह अनुग्रह प्रणिधान (सम्पूर्ण समर्पण) के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। पतंजलि के दर्शन में ईश्वर सबसे प्रमुख तत्व के रूप में विद्यमान है। योगदर्शन और सांख्यदर्शन को समान बताने वाले विद्वान यहां पर इन दोनों दर्शनों को अलग पाते हैं। जहाँ सांख्य प्रकृति और पुरुष कि ही बात करता है, वहीं योगदर्शन ईश्वर को इन दोनों के आकर्षण का प्रेरणा श्रोत बताकर सर्वश्रेष्ठ घोषित करता है। योगदर्शन में ईश्वर ही सर्वश्रेष्ठ तत्व होने के कारण वह समाधि की शीघ्र प्राप्ति कराने में सक्षम है। उसका अनुग्रह मात्र से योग के चरम् लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है।
ईश्वर प्रणिधान का वर्णन चित्त वृत्तियों के निरोध के रूप में योग सूत्र में तीन जगह पर हुआ है। पहला 1/23, दूसरा 2/1 और तीसरा 2/32 वें सूत्र में। पहले सूत्र का वर्णन हम ऊपर कर आये हैं, दूसरा सूत्र क्रियायोग से सम्बन्धित है। क्रियायोग के अन्तर्गत तप, स्वाध्याय व ईश्वर प्रणिधान आते है। यहाँ भी चित्त की निर्मलता के उपाय के रूप ईश्वर प्रणिधान का वर्णन किया गया है, तथा तीसरा सूत्र अष्टांग योग के दूसरे अंग नियम से सम्बन्धित है। नियम के अन्तर्गत् –शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान आते है। यहां भी ईश्वर प्रणिधान चित्त को निर्मल करने के उपाय के रूप में प्रयोग किया गया है। (नोट– क्रिया योग व अष्टांग योग का वर्णन इस पाठ्यक्रम की अन्य पाठ्य सामग्री में किया जायेगा।
ईश्वर भक्ति शरीर, इन्द्रिय, मन, प्राण तथा अंतःकरण जैसे सभी बाह्य और आभ्यन्तर करणों के द्वारा सम्पादित सभी कर्मों और उनके फलों को बिना अपेक्षा के भाव के ईश्वर को समर्पित कर देना है। महर्षि पतंजलि ने 1/23 वें सूत्र के पश्चात् ईश्वर को भी परिभाषित किया है। परिभाषा के अनुसार "क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से मुक्त पुरुष विशेष ही ईश्वर है।" अर्थात् जो क्लेश (पंच क्लेश–अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष व अभिनिवेश), कर्म (कृष्ण कर्म, शुक्ल कर्म, कृष्ण–शुक्ल कर्म, अशुक्लाकृष्ण कर्म), विपाक (वर्तमान कर्मफल) व आशय (कर्म संस्कार) से मुक्त पुरुष पुरुषविशेष है, वही ईश्वर है। यहां ईश्वर को पुरुष विशेष की संज्ञा दी गयी है। जबकि सामान्य जीव के भीतर पुरुष निवास करता है, जो क्लेश, कर्म, विपाक व आशय से बद्ध है।

महर्षि पतंजलि ने ईश्वर प्रणिधान हेतु प्रणव अर्थात् ओंकार के जप का विधान किया है, क्योंकि प्रणव ईश्वर का नाम विशेष है, तथा इसके अर्थ की भावना करने से ईश्वर प्रणिधान की सिद्धी होती है और सिद्धी के फलस्वरूप असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति होती है। व्यास भाष्य में ईश्वर प्रणिधान के सम्बन्ध में कहा गया है कि –"शय्या या आसन पर स्थित था फिर मार्ग पर चलते हुए आत्मनिष्ठ संशय आदि वितर्को से रहित योगी जब ईश्वर प्रणिधान करता है। तब वह संसार के बीज अविद्या आदि क्लेशों के क्षय होने का अनुभव करता हुआ परमात्मा रूपी अमृत का आनन्द लेता है।" यहां पर परमात्मा रूपी अमृत

के आनन्द से तात्पर्य असम्प्रज्ञात समाधि से ही है। यह परमात्मा रूपी अमृतानन्द सात्विक, राजसिक व तामसिक तीनों प्रकार की चित्त वृत्तियों के निरोध के पश्चात् प्राप्त होता है।

आप यह शंका व्यक्त कर सकते है, कि जब ईश्वर प्रणिधान से ही चित्त वृत्तियों का निरोध हो सकता है, तो अन्य उपायों की क्या आवश्यकता है। इस शंका के समाधान हेतु विद्वत् जन बताते है, कि ईश्वर प्रणिधान रहित अन्य वृत्ति निरोध के उपायों को सम्पादित करते समय जो विघ्न का सामने आते हैं, उनके कारण समाधि के लाभ में देरी होती है। जिसके कारण समाधि के लाभ में देरी होती है। अर्थात् समाधि देर से प्राप्त होती है। जबकि ईश्वर प्रणिधान सहित अन्य वृत्ति निरोध के उपायों को सम्पादित करते समय विघ्नों का सामना कम करना पड़ता है। जिसके कारण समाधि की प्राप्ति शीघ्र होती है, तथा उसमें स्थायित्व भी होता है। भारत की दार्शनिक परम्परा में ईश्वर का विशेष महत्त्व है। यही कारण है, कि हम योगदर्शन में भी इसके प्रभाव को सबसे अधिक पाते है। योगदर्शन में ईश्वर की उस अव्यक्त सत्ता के प्रति समर्पण को प्रमुखता दि गयी है। इस अव्यक्त सत्ता की यह विशेषता है, कि यह किसी भी रूप में अभिव्यक्त हो सकती है। कभी राम, कभी कृष्ण तो कभी शिव या शक्ति के रूप में। किन्तु स्वयं में यह नाम व गुणों से मुक्त है। बंधनों से मुक्त यह सत्ता ही चित्त के विक्षेपों को शान्त करने में समर्थ है। इसीलिए इस सत्ता के प्रति समर्पण का फल असम्प्रज्ञान समाधि है।

अभ्यास प्रश्न भाग–4

1. लघुउत्तरीय प्रश्न

   (क) ईश्वर की परीभाषा दीजिए।

   (ख) क्रियायोग के अंग कौन–कौन से हैं?

   (ग) ईश्वर प्रणिधान से क्या तात्पर्य है?

2. एक शब्द में उत्तर दें –

   (क) ईश्वर प्रणिधान अष्टांग योग के किस अंग के अन्तर्गत् आता है?

   (ख) ईश्वर का वाचक क्या है?

   (ग) योग दर्शन के अनुसार सर्व श्रेष्ठ तत्व कौन सा है?

4.3.4 भावना चतुष्टय :

भावना चतुष्टय के अन्तर्गत महर्षि पतंजलि ने योग साधक के लिए चार प्रकार की भावनाओं को चार प्रकार के जीव विशेष के प्रति आचरण हेतु बताया है। पतंजलि के अनुसार –

मैत्री करुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्। (यो०सू० 1/33)

अर्थात् सुखी, दुःखी, पुण्यात्मा तथा पापात्मा जीवों के प्रति क्रमशः मैत्री, करुणा, मुदिता (प्रसन्नता) और उपेक्षा की भावना करने से चित्त प्रसन्न (निर्मल) होता है। तात्पर्य यह है कि सुखी रहने वाले सभी प्राणीयों के प्रति मित्रता की भावना करनी चाहिए, सभी दुःखी प्राणीयों

के प्रति दया या करुणा का भाव रखनी चाहिए, पुण्य करने वाले सभी प्राणियों के प्रति योग साधक को मुदिता या प्रसन्नता की भावना करनी चाहिए, तथा अपुण्य अर्थात् पाप करने वाले प्राणीयों के प्रति योग साधक को उदासीनता का भाव रखना चाहिए।

चित्त को सम्प्रज्ञातादि समाधि के लायक बनाने से पूर्व कुछ अभ्यास किये जाते है। इन प्रारिम्भक अभ्यासों को चित्त शोधन क्रिया या परिकर्म के नाम से जाना जाता है। इन परिकर्मों को सम्पादित करने से चित्त में प्रसन्नता आती है। जिससे चित्त समाधि जैसी उच्चतर भूमियों में स्थिर हो सके। इन परिकर्मों के अन्तर्गत् उक्त भावनाओं के चार प्रकार भी आते है। ऊपर बताई गयी चार प्रकार की भावनायें योग साधक द्वारा मात्र मनुष्य ही नहीं अपितु समस्त प्राणी जगत के प्रति आचरणीय है, अर्थात् योग साधक को सभी प्राणीयों के प्रति ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए। वर्तमान के सन्दर्भ में देखकर यदि इस बात को कहें तो कुछ इस प्रकार कहेगें कि हम सामान्य जनों को सुखी जनों के प्रति ईर्ष्यादि की भावना नहीं करनी चाहिए, दुःखी प्राणी के प्रति उदासीनता की भावना नहीं करनी चाहिए, पुण्यात्मओं के प्रति द्वेष की भावना नहीं करनी चाहिए तथा पापियों के प्रति मैत्री का भाव नहीं रखना चाहिए। इसके साथ ही पापियों के प्रति द्वेष का भी भाव नहीं रखना चाहिए।

यदि भावना चतुष्टय के इस सिद्धान्त का पालन हम सामान्य जीवन में भी करते है, तो इसके विपरीत भाव रखने से हमारे चित्त पर जो संस्कारों का मल चढ़ा है। वह क्षीण होता है, जिससे चित्त में निर्मलता पैदा होती है, तथा चित्त संस्कार मुक्त होकर प्रसन्नता के दिव्य प्रकाश से ओत–प्रोत हो जाता है। प्रसन्नता से पूर्ण इस चित्त में ही। सम्प्रज्ञातादि समाधियों का उदय होता है।

राजस और तामस वृत्तियों के कारण निम्न छः प्रकार के मल चित्त को मलिन करते हैं – राग, ईर्ष्या, परापकार, असूया, द्वेष, और अमर्ष ।

राग : राजस वृत्ति के कारण उत्पन्न यह मल "यह सुख सदैव मुझे प्राप्त होता रहे" चित्त में ऐसा भाव उत्पन्न करता है। जिससे चित्त सुख पाने के लिए निरन्तर लालायित रहता है, और चित्त विक्षिप्त होकर मलिन हो जाता है।

ईर्ष्या : दूसरों के सुख संसाधनों या सम्पत्ति को देखकर चित्त में जो दाह का भाव पैदा होता है। उस ईर्ष्या नामक मल से चित्त मलिन हो जाता है।

परोपकार : किसी का अहित करने की भावना परोपकार नामक चित्त का मल कहलाता है।

असूया : दूसरों के गुणों में भी दोषों को खोजने की प्रवृत्ति असूया नामक चित्त का मल कहलाताहै।

द्वेष : दुःख का अनुभव करने वाला व्यक्ति जब दुःख के प्रति अथवा दुःख देने वाले के प्रति जो क्रोध का भाव रखता है। वही –द्वेष नामक चित्त का मल है।

अमर्ष : किसी को दुःख पहुँचाने की भावना से कठोर वचन बोलना अमर्ष नामक चित्त का मल है।

सामान्यतः इस अमर्ष नामक मल को बदला लेने की भावना के रूप में भी समझ सकते है।

ऊपर वर्णित चित्त के इन छः मलों की निवृत्ति हेतु ही महर्षि पतंजलि ने भावना चतुष्टय का वर्णन किया है। आइये समझते है, कि भावना चतुष्टय के द्वारा इन छः मलों से चित्त को किस प्रकार मुक्त किया जा सकता है। सुखी व्यक्ति को देखकर उसके प्रति मित्रता की भावना ईर्ष्या नामक मल चित्त से निवृत्त हो जाता है। अर्थात् मित्र के सुख को ही अपना सुख मानना चित्त में प्रसन्नता उत्पन्न करता है। जिससे मन में दाह का भाव पैदा ही नहीं होता। वहीं दुःखी लोगों के प्रति करुणा का भाव रखने से परोपकार की भावना पैदा होती है, और यह परोपकार की भावना चित्त के परपकार नामक मल से मुक्त कर देती है। तीसरी भावना है, पुण्यशील व्यक्तियों के प्रति मुदिता (प्रसन्नता) की भावना करना, इस भावना के द्वारा चित्त से असूया नामक मल को नष्ट किया जा सकता है– जैसे जब हम पुण्यशील या अच्छे लोगों को देखें तो उनके गुणों की प्रशंसा करे न कि निंदा। जिससे पुण्यशील व्यक्ति के चित्त में प्रसन्नता के साथ–साथ स्वयं हमारा चित्त भी निर्मलता और प्रसन्नता का अनुभव करेगा। चौथी भावना है, पाप मार्ग में लगे हुए लोगों के प्रति उदासीनता की भावना जिससे चित्त द्वेष और अमर्ष नामक मलों से मुक्त हो जाता है। क्योंकि जब कोई पाप प्रवृति वाला व्यक्ति आपको कष्ट पहुंचाये या कठोर वचन बोले तो उसे उसकी ही पाप वृत्ति में उत्तर न देकर उसके प्रति उदासीनता की भावना का आचरण करना चाहिए। जिससे आपका चित्त तो प्रसन्न होगा ही अपितु कुछ समय पश्चात् वह पापी व्यक्ति भी अपनी पाप वृत्ति को अनुभव कर उससे मुक्त होने का प्रयास करेगा। इस प्रकार आपने चार प्रकार की भावनाओं के द्वारा किस प्रकार चित्त को प्रभावित करने वाले छः मलों को मुक्त किया जा सकता है। यह समझा, आइये सरलता और याद रखने के लिए इस प्रक्रिया को एक सारणी से समझते है–

	भावना चतुष्टय	**मल विशेष की निवृत्ति**
1.	मैत्री	ईर्ष्या
2.	करुणा	परपकार
3.	मुदिता	असूय
4.	उपेक्षा	द्वेष व अमर्ष

(नोट :– राग और द्वेष नामक चित्त मलों को विस्तार से जानने के लिए पातंजल योगसूत्र के 2/3 वें सूत्र का विस्तृत अध्ययन करें। इन चित्त मलों की निवृत्ति के लिए क्रियायोग आदि उपायों का वर्णन किया गया है, जिन्हें आप अलग से पढ़ेगें।)

इन चारों चित्त प्रसादन की भावनाओं पर सूक्ष्म चिन्तन से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं। की ये भावनायें बुद्धि का खेल मात्र है। यह बुद्धि हमारे कर्मों की नियामक ही नहीं अपितु उत्पादक भी है। यह बुद्धि का विशुद्ध स्वरूप है। कहने का तात्पर्य यह है, कि इन भावनाओं के चिन्तन मात्र से चित्त से सारे मल धुल जाते हैं। जिससे चित्त का प्रसादन (निर्मलिकरण) प्रारम्भ हो जाता है। जिससे यह प्रसन्न चित्त एकाग्रता को प्राप्त होने लगता है, और अंततः चित्त सभी वृत्ति से निरोध के लक्ष्य को प्राप्त कर असम्प्रज्ञात समाधि का आनन्द भोगता है।

अभ्यास प्रश्न भाग–5

1. रिक्त स्थान की पूर्ति करें –

(क) भावना चतुष्टय के आचरण से चित्त .... होता है।

(ख) किसी को दुःख पहुँचाने की भावना से कठोर शब्द बोलना .... कहलाता है।

(ग) मित्रता की भावना से .... नामक मल की निवृत्ति होती है।

2. सत्य/असत्य बताइये –

(क) पाप करने वाले प्राणी के प्रति प्रसन्नता की भावना करनी चाहिए। (सत्य/असत्य)

(ख) मुदिता की भावना से असूय नामक मल की निवृत्ति होती है। (सत्य/असत्य)

(ग) बुद्धि हमारे कर्मों की नियामक ही नहीं उत्पादक भी है। (सत्य/असत्य)

4.3.5 प्राणायाम :

महर्षि पतंजलि ने चित्त वृत्ति निरोध के उपायों में प्राणायाम का वर्णन किया है। हालांकि प्राणायाम का वर्णन महर्षि ने अष्टांग योग के अन्तर्गत भी किया है, किन्तु सूत्र संख्या 1/34 में प्राणायाम को विशिष्ट रूप से चित्त प्रसादन के लिए उपदेशित किया गया है। यथा –

प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य । (यो०सू० 1/34)

उक्त सूत्र के भाष्य में भाष्यकार व्यास कहते हैं – "उदरस्थ वायु को नासिका से विशिष्ट प्रयत्न के द्वारा निकालना प्रच्छर्दन कहलाता है। (इस क्रिया को रेचक भी कहते हैं) तथा उस बाहर वमन की गयी वायु को वहीं रोकना विधारणा कहलाता है। (इस क्रिया को बाह्य कुम्भक कहते हैं।) इन प्रच्छर्दन और विधारणा प्राणायाम से चित्त प्रसन्न होता है।" इस प्रकार हम देखते हैं, कि प्रच्छर्दन शब्द से रेचक प्राणायाम तथा विधारणा शब्द से पूरक और कुम्भक प्राणायामों को समझना चाहिए। इस प्रकार पूरक कुम्भक और रेचक प्राणायामों की त्रिवेणी से चित्त की प्रसन्नता और एकाग्रता होती है।

महर्षि पतंजलि ने प्राणायाम पर विस्तृत चर्चा योग सूत्र के द्वितीय पाद (साधन पाद) के – 49,50,51,52 वें सूत्र में कि है। जहाँ सर्वप्रथम उन्होंने प्राणायाम को परिभाषित करते हुए कहा हैं–

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः। (यो०सू० 2/49)

अर्थात् "श्वास और प्रश्वास की गति का विच्छेद करना ही प्राणायाम है।" इस परिभाषा को सामान्य भाषा में इस प्रकार कह सकते हैं। श्वास प्रश्वास की स्वभाविक गति को नियन्त्रित करना ही प्राणायाम है। प्राणायाम को परिभाषित करने के पश्चात् महर्षि पतंजलि

ने प्राणायामों के भेदों पर प्रकाश डाला है। पतंजलि के अनुसार प्राणायाम के चार भेद है जिनका वर्णन 2/50 वें सूत्र में आया है। यथा–

प्राणायाम

बाह्यवृत्ति | आभ्यन्तर वृत्ति | स्तम्भ वृत्ति | बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी

अब सबसे पहले क्रमशः इन प्राणायामों पर चर्चा करते हैं –

बाह्यवृत्ति : ग्रहण कि गयी वायु का पूर्णत, रेचक करने के पश्चात् उसे बाहर ही रोककर कुम्भक करना बाह्यवृत्ति प्राणायाम कहलाता है।

आभ्यन्तर वृत्ति : बाहर निकाली गयी वायु को दीर्घ पूरक करके फेफड़ों में ही रोकना आभ्यन्तर कुम्भक कहलाता है।

स्तम्भवृत्ति : श्वास अथवा प्रश्वास को जहाँ का तहाँ रोक देना, अर्थात् श्वास प्रश्वास की सामान्य गति को अचानक स्तम्भित कर देना स्तम्भ वृत्ति प्राणायाम कहलाता हैं। व्यास भाष्य में भाष्यकर्ता व्यास इस प्राणायाम के विषय में कहते हैं, कि जिस प्रकार तपे हुए पत्थर पर जल डालने पर जल सब ओर से संकुचित हो जाता है। उसी प्रकार दोनों गतियों (पूरक और रेचक) का एक साथ अभाव या अवरोध स्तम्भ वृत्ति प्राणायाम है।

बाह्याभ्यन्तर विषयक्षेपी : पूर्व के तीनों प्राणायाम का दीर्घ काल तक अभ्यास करने पर जब पूरक और रेचक इतना सूक्ष्म हो जाये की सामान्यतः उनका अनुभव ही न रहे तब यह चौथा प्राणायाम सिद्ध होता है। इस प्राणायाम में श्वास प्रश्वास अति सूक्ष्म हो जाता है। मानों श्वास प्रश्वास है ही नहीं। यही प्राणायाम की अंतिम अवस्था भी है।

महर्षि पतंजलि ने प्रथम तीनों प्राणायामों को देश, काल व संख्या के आधार पर दीर्घ व सूक्ष्म में विभाजित किया है, तो चलिए समझते है, कि यह देश,काल व संख्या क्या है।

देश : यहाँ देश से तात्पर्य पूरक, कुम्भक व रेचक कहां तक किया गया से है, जैसे पूरक में श्वास को खींचकर मूलाधार चक्र तक ले जाना अथवा कुम्भक में श्वास को नाभि चक्र में रोक लेना आदि। यहाँ पर पूरक की स्थिति मूलाधार में थी और कुम्भक की स्थिति नाभि चक्र तक थी। यह श्वास का स्थान ही देश कहलाता है। सामान्य अभ्यास में ऐसा करना कठिन है। किन्तु लम्बे अभ्यास के पश्चात् यह सम्भव हो पाता है। अब आप समझ गये होगें की प्राणायाम में देश से क्या तात्पर्य है।

काल : काल से तात्पर्य है कि पूरक, कुम्भक और रेचक कितने क्षणों तक रहा। यहां समझने वाली बात यह है, कि एक क्षण में कितना समय होता है? इस प्रश्न का उत्तर योग सूत्र के एक अन्य भाष्यकार वाचस्पति मिश्र के भाष्य तत्व वैशारदी में मिलता है। वाचस्पति के अनुसार पलक के गिरने में जितना समय लगता है, उसके चौथाई समय को एक क्षण

कहते हैं। हालांकि क्षण का हिसाब रख पाना थोड़ा मुश्किल है, लेकिन यदि हम वर्तमान की समय प्रणाली की सामान्यतः सबसे छोटी ईकाई सेकण्ड की बात करें तो हम कहेगे कि पूरक, कुम्भक अथवा रेचक में किसी भी एक को करने में जितने सेकेण्ड का समय लगता है, उसे उस अवस्था का काल कहेगें। जैसे पूरक को करने में यदि 10 सेकण्ड का समय लगता है, तो हम कहेगें की पूरक का काल 10 सेकण्ड रहा।

संख्या : संख्या के द्वारा जो प्राणायाम की माप की जाती है। वह वास्तव में काल का ही एक रूप है। योगसूत्र के एक अन्य भाष्यकार विज्ञान भिक्षु के अनुसार "श्वास और प्रश्वास में व्यय समय को मात्रा कहते हैं।" यह मात्रा ही संख्या है। इस पद्धति के अनुसार 12 मात्राओं वाले प्राणायाम को मृदु अर्थात् हल्का प्राणायाम कहते हैं। और 24 मात्राओं के प्राणायाम को मध्य प्राणायाम कहते है। तथा 36 मात्राओं वाले प्राणायाम को तीव्र प्राणायाम कहते हैं। जब प्राणायाम के दौरान श्वास प्रश्वास की गति का विच्छेदन होता है, तब अपान वायु नाभि से ऊपर उठता है और सिर के मध्य भाग पर चोट करता है। अपान वायु द्वारा सिर के मध्य भाग पर की जाने वाली इस चोट को उद्‌घात कहते हैं। यह उद्‌घात 12 मात्रा काल में 01 बार होता है।

अब तक आपने प्राणायाम के देश, काल व संख्या परिमाण के बारे में समझा अब बात करते हैं, कि दीर्घ और सूक्ष्म प्राणायाम कब होता है। जब पूरक, कुम्भक व रेचक को देश, काल व संख्या के बढ़ते क्रम में निरन्तर अभ्यास किया जाता है, तब एक ऐसी स्थिति आती है, जब श्वास प्रश्वास का आभास ही नहीं होता अर्थात् श्वास लेने और छोड़ने पर श्वास की गति का अनुभव ही नहीं होता तब समझना चाहिए कि प्राणायाम सूक्ष्म हो गया है। और जब यह अवस्था कई घण्टों तक बनी रहे तब समझना चाहिए की प्राणायाम दीर्घ हो गया है।

इस प्रकार आपने प्राणायाम के देश, काल व संख्या के बारे में जाना तथा आपने यह भी जाना की प्राणायाम कब दीर्घ व सूक्ष्म हो जाता है। प्राणायाम पर प्रकाश डालते हुए महर्षि पतंजलि 2/52 वे सूत्र में कहते हैं –

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् । (यो०सू० 2/52)

अर्थात् "प्राणायाम के सिद्ध होने पर चित्त के प्रकाश पर पड़ा हुआ संस्कारों का पर्दा क्षीण (नष्ट) हो जाता है" और जब यह संस्कारों का पर्दा क्षीण हो जाता है, तो साधक को योग के परम आनन्द असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति होती है। कहने का तात्पर्य यह है, कि प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास से चित्त की वृत्तियों का निरोध सम्भव है।

इस प्रकार अब तक की चर्चा से आप प्राणायाम पर पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर चुके होगें। तो आइये अगले चित्त वृत्ति निरोध के विषय पर चर्चा प्रारम्भ करते हैं।

अभ्यास प्रश्न भाग– 6

1. लघु उत्तरीय प्रश्न।

(क) प्राणायाम के प्रकारों का नामोल्लेख करें।

(ख) योगसूत्र में प्राणायाम की विस्तृत चर्चा किस पाद में और किन सूत्रों में की गयी है।

(ग) प्राणायाम की परीभाषा बताइये।

2. एक शब्द में उत्तर दें –

(क) श्वास को ग्रहण कर (पूरक) रोकना कैसा प्राणायाम है?

(ख) श्वास प्रश्वास में व्यय समय को मात्रा कहते है। यह कथन किसके अनुसार है।

(ग) श्वास जहां पर जाकर ठहरता है, उस स्थान को क्या कहते हैं?

4.3.6 विषयवती प्रवृत्ति :

महर्षि पतंजलि ने वृत्ति निरोध के उपायों में अगला उपाय योगसूत्र के 1/35 वें सूत्र में बताया है।

विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धिनी। (यो०सू० 1/35)

अर्थात् "गन्धादि पाँचों विषयों का साक्षात्कार करने वाली वृत्तियाँ भी उत्पन्न होने पर चित्त को स्थिरता प्रदान करती है।" कहने का तात्पर्य यह है, कि ये वृत्तियाँ सात्विक होती है, और जब इनकी प्रबलता होती है, तब राजसिक और तामसिक वृत्तियों का निरोध हो जाता है।

अब सबसे पहले आपके मन में यह प्रश्न उठ रहा होगा की यह गन्धादि जिन पांच विषयों की चर्चा हुई है, वह क्या है? तो आइये सबसे पहले इन्हें समझते हैं। आपने पंच महाभूतों के बारे में तो अवश्य ही सुना होगा इन पंच महाभूतों के गुणों को ही यहाँ पर गन्धादि पांच विषय कहा गया है। पंचमहाभूतों के गुणों को आप निम्न सारणी से समझ सकते हैं। इस सारणी में इन गुणों को शरीर के जिस अंग पर धारण कर साक्षात्कार किया जाता है। उसका भी वर्णन किया जा रहा है। इस सारणी का विस्तृत वर्णन सारणी के बाद में किया जायेगा –

क्र.सं.	पंच महाभूत	गुण विशेष	धारणा हेतु अंग
1.	आकाश	शब्द	जिह्वा की जड़ भाग
2.	वायु	स्पर्श	जिह्वा का मध्य भाग
3.	अग्नि	रूप	तालु
4.	जल	रस	जिह्वा का अग्र भाग
5.	पृथ्वी	गंध	नासिका

उक्त सारणी का निर्माण व्यास भाष्य पर आधारित है, तो आइये अब सारणी का विश्लेषण करते हैं । सारणी के अनुसार नासिका के अग्रभाग में धारणा करने वाले साधक को जो दिव्य गंध का साक्षात्कार होता है। वह गन्ध नामक प्रवृत्ति को उत्पन्न करती है। जिह्वा के अग्र भाग पर धारणा करने से साधक को दिव्य रस का साक्षात्कार होता है, जिससे रस प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। तालु में धारणा करने से दिव्य रूप का साक्षात्कार होता है, जिससे

रूप प्रवृत्ति का साक्षात्कार होता है। जिह्वा के मध्य भाग में धारणा करने से दिव्य स्पर्श का साक्षात्कार होता है, जिससे स्पर्श प्रवृत्ति का उदय होता है। तथा जिह्वा के जड़ में धारणा करने से साधक को दिव्य शब्द का साक्षात्कार होता है, जिससे शब्द प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। ये प्रवृत्तियां उत्पन्न होकर चित्त को स्थिर करती तथा संशय को भी दूर करती है।
अब आपके मन में प्रश्न उठ रहा होगा की ये प्रवृत्तियाँ चित्त को स्थिर कैसे कर पाती हैं? इस का उत्तर है, कि गन्धादि जो पांच विषय है। वह दिव्य और अदिव्य दो भागों में विभाजित होते है। जिससे ये कुल मिलाकर दस प्रकार के हो जाते है। इन पांचों विषयों का जो दिव्य रूप है। वह अक्लिष्ट अर्थात् क्लेशों से मुक्त है, जबकि अदिव्य रूप क्लिष्ट अर्थात् क्लेश कारक है। अतः जब साधक किसी अंग विशेष पर धारणा करता है। तो इन गन्धादि विषयों के दिव्य स्वरूप का साक्षात्कार होता है। यह दिव्य स्वरूप दिव्य प्रवृत्तियों को उत्पन्न करते हैं। ये दिव्य प्रवृत्तियाँ मूलतः सत्वगुण प्रधान होती है। जिससे अन्य राजसिक और तामसिक वृत्तियाँ दब जाती है। और चित्त में सत्व का उदय होने से वशीकार संज्ञा नामक वैराग्य उत्पन्न होता है, जो विवेकख्याति प्रज्ञा का बोध कराकर साधक को दिव्य आनन्द की प्राप्ति कराता है।
इन गन्धादि विषयों के साक्षात्कार से उत्पन्न गन्धादि प्रवृत्ति उत्पन्न होने पर उनके विषय में वशीकार संज्ञा वैराग्य उत्पन्न होकर उन तत्वों के प्रति वैराग्य का बोध करा देता है, जिससे इन विषयों के प्रति चित्त का आकर्षण समाप्त हो जाता है। ये जो पांचों विषयवती प्रवृत्तियाँ होती है। यह अस्थायी होती है, अर्थात् यह कुछ समय के लिए रहती है। और उसके पश्चात् पुनः लुप्त हो जाती है। जिससे साधक को यह ज्ञान हो जाता है, कि ये प्रवृत्तियाँ अस्थायी और चंचल है, ऐसा ज्ञान होने पर साधक के चित्त में अपर वैराग्य का उदय होता है। इस अपर वैराग्य के समय सात्विक वृत्ति बनी रहती है। अतः साधक को सम्प्रज्ञात समाधि का लाभ मिल जाता है, उसके पश्चात श्रद्धा, वीर्य, स्मृति (ध्यान) तथा समाधि (सम्प्रज्ञात) इन साधनों के द्वारा साधक योग के परम लक्ष्य असम्प्रज्ञात को प्राप्त कर लेता है, और यही इस विषयवती प्रवृत्ति का लक्ष्य भी है।

अभ्यास प्रश्न भाग– 7

1. बहुविकल्पीय प्रश्न –

(क) आकाश तत्व का गुण है।

(अ) शब्द (स) रूप

(ब) स्पर्श (द) रस

(ख) जिह्वा के मध्य भाग में धारणा करने से किस विषय का साक्षात्कार होता है।

(अ) दिव्य शब्द (स) दिव्य स्पर्श

(ब) दिव्य रस (द) दिव्य रूप

2. सत्य/असत्य बताइये –

(क) तालु में धारणा से दिव्य शब्द का साक्षात्कार होता है। (सत्य/असत्य)

(ख) गन्धादि विषयों का अदिव्य रूप अक्लिष्ट भी होता है। (सत्य/असत्य)

(ग) गन्धादि विषयों के साक्षात्कार से वशीकार वैराग्य उत्पन्न होता है। (सत्य/असत्य)

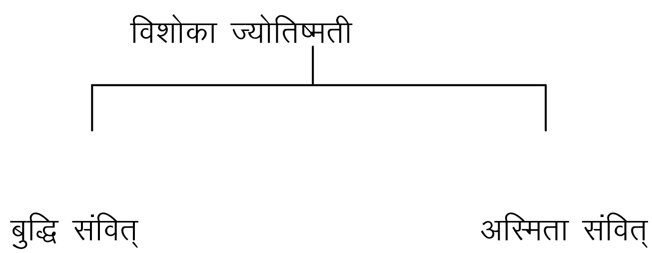
4.3.7 ज्योतिष्मती प्रवृत्ति :

चित्त वृत्तियों के निरोध का अगला उपाय महर्षि पतंजलि ने यो.सू. 1/36 वें सूत्र में बताया है। यथा–

विशोका वा ज्योतिष्मती। (यो०सू० 1/36)

अर्थात् "विशोका (शोक रहित) ज्योतिष्मती नामक प्रवृत्ति उत्पन्न होने से चित्त में स्थिरता आती है।"

यहाँ महर्षि पतंजलि जिस विशोका ज्योतिष्मती प्रवृत्ति की बात कर रहे है। वह क्लेश रहित सात्त्विक प्रकाश की धारणा से सम्बन्धित है। यह विशोका ज्योतिष्मती नामक प्रवृत्ति दो प्रकार की होती है। –



सबसे पहले बुद्धि संवित् पर चर्चा करते हैं –

बुद्धि संवित् विशोका ज्योतिष्मती : इस धारणा में साधक हृदय पुण्डरीक अर्थात् हृदय कमल जिसे अनाहत चक्र भी कहते हैं। पर धारणा करता है, क्योंकि इस हृदय कमल में बुद्धि की सत्ता मानी गयी है। अतः बुद्धि पर कि गयी यह धारणा बुद्धि का साक्षात्कार कराती है। यही बुद्धि संवित् नामक पहली विशोका ज्योतिष्मती प्रवृत्ति है।

यह बुद्धि सत्व के समान प्रकाशवान होती है, तथा आकाश के समान व्यापक भी होती है। जब चित्त इस बुद्धि में स्थिर हो जाता है। तब वह इस प्रकाशवान बुद्धि के समान प्रकाशित होने लगता है। जिससे चित्त निर्मलता को प्राप्त कर लेता है। यह बुद्धि साक्षात्कार रूपी प्रवृत्ति सूर्य, चन्द्र, ग्रह और मणियों की चमक या कान्ति को भी विकल्प के रूप में प्रयोग

करती है। आपके मन में अवश्य यह प्रश्न उठ रहा होगा कि बुद्धि सूर्य, चन्द्र, ग्रह या मणियों की कान्ति को विकल्प के रूप में कैसे प्रयोग कर सकती होगी? इस प्रश्न का समाधान यह है, कि जब बुद्धि सत्व का साक्षात्कार कर चुकि होती है। तब चित्त सत्व के प्रकाश से प्रकाशित होकर आकाश के समान व्यापक हो जाता है, प्रकाशित हुआ वह चित्त उस व्यापक प्रसार में सूर्य, चन्द्र, ग्रह या किसी मणि के समान चमकता है। यहाँ पर एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है, कि कुछ विद्वान जिनमें योग सूत्र के भाष्यकार वाचस्पति मिश्र प्रमुख है। बुद्धि तत्व का तात्पर्य मन से लगाते है। अर्थात् वह योग सूत्र में जहाँ बुद्धि की बात कही गयी है, वहाँ बुद्धि के स्थान पर मन का प्रयोग करते हैं।

अस्मिता संवित् विशोका ज्योतिष्मती : अस्मिता से तात्पर्य आत्म तत्व के बोध से है, जब योग साधक अस्मिता में धारणा करता है, अर्थात् अपने आत्मतत्व की धारणा करता है। तब उसका चित्त निस्तरंग महान समुद्र के सदृश शांन्त और अनन्त हो जाता है। यहाँ पर चित्त को उपमा अलंकार की सहायता से शांत समुद्र तथा निस्तरंग बताया गया हैं, निस्तरंग समुद्र इसलिए कहा गया है, क्योंकि जब साधक आत्मतत्व (अस्मिता) पर धारणा करता है। तब उसके चित्त से राजस और तामस ही नहीं अपितु सात्विक वृत्तियों का लोप हो जाता है। जिससे उसका चित्त वृत्ति विहीन हो जाता है। वृत्ति विहीन हुआ यह चित्त शांत और स्थिर हो जाता है। इसलिए ही चित्त को शान्त स्थिर निस्तरंग समुद्र की उपमा से अलंकृत किया गया है।

इस प्रकार आपने विशोका ज्योतिष्मती प्रवृत्ति के दोनों प्रकारों को समझा विशोका ज्योतिष्मती प्रवृत्ति मूलतः शोक रहित और प्रकाशवान है। अतः स्वभाव से ही इस प्रवृत्ति में राजस और तामस वृत्तियाँ शून्य होती है। सात्विक वृत्ति भी मात्र सहायक के रूप में साधक के चित्त को स्थिरता प्रदान करने हेतु अवलम्बन का कार्य करती हैं, इसकी सहायता से साधक चित्त को निस्तरंग करने का प्रयास करता है, और जब साधक का चित्त निस्तरंग हो जाता है, तब वह अपने स्वरूप में स्थित होकर अस्मिता के परम आनन्द का अनुभव करता है। इस अवस्था में साधक अस्मितानुगत समाधि का लाभ लेता है। अब साधक द्वारा प्राप्त की गयी यह समाधि धीरे–धीरे अभ्यास से असम्प्रज्ञात तक पहुंच जाती है, और यही योग साधना का परम लक्ष्य है।

तो इस प्रकार आपने विशोका ज्योतिष्मती प्रवृत्ति के विषय पर परिपूर्ण जानकारी हासिल कर ली है। अब अगली निरोध प्रवृत्ति के विषय पर चर्चा प्रारम्भ करते है।

अभ्यास प्रश्न भाग–8

1. रिक्त स्थान की पूर्ति करें –

(क) विशोका ज्योतिष्मती के .... प्रकार हैं।

(ख) बुद्धि संवित् विशोका ज्योतिष्मती में बुद्धि .... के समान व्यापक हो जाती है।

(ग) ज्योतिष्मती प्रवृत्ति मूलतः .... और .... है।

2. एक शब्द में उत्तर दिजिए –

(क) बुद्धि तत्व का तात्पर्य मन किसने किया है?

(ख) अस्मिता संवित् ज्योतिष्मती में चित्त को किसकी उपमा दि गयी है?

(ग) बुद्धि संवित् ज्योतिष्मती में धारणा कहाँ की जाती है?

4.3.8 वीतराग विषयक चित्त :

चित्त वृत्तियों के निरोध के अगले उपाय के रूप में महर्षि पतंजलि ने "वीतराग चित्त को धारणा का विषय बनाने से योग साधक के चित्त में स्थिरता आती है।" सूत्र इस प्रकार है।

वीतराग विषयं वा चित्तम्।। (यो०सू० 1/37)

सूत्र का भाव यह है, कि ऐसे वीतराग पुरुषों जिन्होंने योग के परम् लक्ष्य को प्राप्त कर लिया हो और जो प्रारम्भिक योग साधक के लिए एक आदर्श के समान है, उन वीतराग पुरुषों के निर्मल चित्त की धारणा यदि योग साधक अपने चित्त में करता है तो उसका चित्त भी उन वीतराग योगियों के चित्त के समान निर्मल हो जाता है।

वीतराग पुरुषों से तात्पर्य है। श्रेष्ठ योगियों से जैसे शुक, व्यास, जड़ भरत, सनकादि ऋषि, नारद आदि जिन्होंने स्वयं वीतराग होने के पश्चात् लोकसंग्रह हेतु सामान्य जनों के उद्धार के लिए समाज में एक समान्य योगी की भांति विचरण करते हैं, जिससे प्रारम्भिक योगी इन योगीयों के चरित्र को अपना आदर्श बनाकर उनके चित्त के प्रकाश के आलोक में अपने चित्त को भी प्रकाशित कर सकता है। महर्षि पतंजलि द्वारा चित्त वृत्तियों के निरोध का यह उपाय नैतिकता के मार्ग का अनुसरण कर नैतिक बनने का एक अतिव्यवहारिक उदाहरण है, जो महान योगी विषयों से पूर्णतः विलग हो चुके हो जिसके कारण उनका अंतःकरण अविद्यादि क्लेशों के संस्कारों से पूर्णतः मुक्त हो ऐसे योगियों के चित्त को धारणा का विषय बनाया जाना चाहिए। क्योंकि प्रारम्भिक योगी को उस निर्मल हुए चित्त का परिणाम ज्ञात होता है, जो की पूर्व के श्रेष्ठ योगी का है। प्रारम्भिक योगी जानता है, कि उस श्रेष्ठ योगी का चित्त निर्मल होकर असम्प्रज्ञात अवस्था को प्राप्त कर चुका है। अतः वह (प्रारम्भिक योगी) भी उस श्रेष्ठ अवस्था को प्राप्त करने के लिए उसी प्रकार अभ्यास करता है। श्रेष्ठ योगी के प्रकाशित चित्त के आलोक में उस प्रारम्भिक योगी के विक्षिप्त चित्त को मार्गदर्शन मिलता है, और वह भी क्रम से उच्चतर अवस्थाओं को प्राप्त करता हुआ योग की श्रेष्ठतम् अवस्था असम्प्रज्ञात को प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार आपने महर्षि पतजंलि द्वारा बताये गये वीतराग विषय चित्त के अवलम्बन की अवधारणा को समझा और एक प्रारम्भिक योगी किस प्रकार उसका आलम्बन कर उच्चतर अवस्था को प्राप्त कर लेता है, यह भी समझा। अब हम अगले चित्त वृत्ति निरोध के उपाय पर चर्चा प्रारम्भ करते हैं–

अभ्यास प्रश्न भाग –9

1. सत्य/असत्य बताइये –

(क) वीतराग पुरुषों के चित्त पर धारणा करने से वृत्ति निरोध होता है। (सत्य / असत्य)

(ख) वीतराग विषय उपाय का वर्णन योगसूत्र के समाधि पाद में हुआ है। (सत्य / असत्य)

(ग) जिनका अंतःकरण अविद्यादि क्लेशों से मुक्त है, वे योगी वीतराग है। (सत्य / असत्य)

4.3.9 स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बन :

चित्त वृत्ति निरोध के इस उपाय के अन्तर्गत् महर्षि पतंजलि "स्वप्न व निद्रा के ज्ञान को धारणा का आलम्बन बनाने वाले योग साधक के चित्त के स्थिर होने की बात कही है" सूत्र इस प्रकार है –

स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा । (यो०सू० 1/38)

यहां पर जिस निद्रा या स्वप्न को आलम्बन करने की बात कही गयी है। वह निद्रा वृत्ति का अक्लिष्ट स्वरूप है, जिसकी चर्चा हम चित्त की वृत्तियों वाली इकाई में कर आये हैं।

जब कभी हम निद्रा से जागने पर यह कहते हैं, कि मैं सुख पूर्वक सोया तो इसका मतलब है, कि हम निद्रा अवस्था में सुख की अनुभूति हुई यहाँ पर यह प्रश्न उठता है, कि स्वप्न में चित्त तम प्रधान हो जाता है। और निद्रा में ज्ञान का अभाव हो जाता है, तो सुख की अनुभूति केसे हुई? सुख तो सत्व प्रधान है। इस समस्या का समाधान यह है, कि जब कभी हम निद्रा के पश्चात् जागते है, और यह कहते हैं कि 'मैं सुख पूर्वक सोया' तो समझना चाहिए कि निद्रा अवस्था के मध्य में जो स्वप्नावस्था का प्रस्फुरण हुआ था। उसमें सुखकर स्वप्न हुए होंगे। तब यदि योग साधक उन सुखकर स्वप्नों को धारणा का विषय बना लें तो योग साधक का चित्त सत्व प्रधान हो उठता है। इस सत्व प्रधान अवस्था को ही यदि निरन्तर अभ्यास का विषय बनाया जाये तो चित्त स्थिरता और निर्मलता को प्राप्त कर सकता है। उदाहरण के लिए निद्रा की अवस्था में साधक को सात्विक स्वप्न के प्रस्फुरण के रूप में अपने ईष्ट देव के दर्शन हो जिसमें वह उनके दिव्य और निर्मल स्वरूप के दर्शन करता है। वह उनके चतुर्भुजों शंख चक्र, गदा व वरद हस्त के दर्शन कर अविभूत हो उठता है। उसका समस्त शरीर व रोम रोम रोमांचित हो उठता है। वह उस समय उस रोमांच का अनुभव कर रहा होता है, जैसे गीता में अर्जुन को तब हुआ था जब भगवान भी कृष्ण ने विराट रूप के दर्शन अर्जुन को कराये थे।

हालांकि साधक ये सारा दिव्य दर्शन निद्रा में स्वप्न के प्रस्फुरण की अवस्था में कर रहा होता है, किन्तु यदि इसी स्वरूप को धारणा का विषय बनाकर साधक अभ्यास करता है, तो उसका चित्त उस सात्विक स्वरूप के आवेग में सात्विक हो उठता है। जिससे उसे शीघ्र ही योग की क्रमशः उच्चतर अवस्थायें प्राप्त होती हैं, और अंततः वह परम लक्ष्य असम्प्रज्ञात को प्राप्त कर ही लेता है। जहाँ उसकी समस्त चित्त वृत्तियों का निरोध हो चुका होता है।

अभ्यास प्रश्न भाग – 10

1. एक शब्द में उत्तर दिजिए –

(क) स्वप्न में चित्त किस गुण की प्रधानता में होता है।

(ख) स्वप्न निद्रा ज्ञान में किस प्रकार के स्वप्नों का आलम्बन किया जाता है।

(ग) निद्रा में किसका अभाव होता है।

4.3.10 यथाभिमत ध्यान :

महर्षि पतंजलि द्वारा बताया गया चित्त वृत्ति निरोध का यहाँ ये अन्तिम उपाय है। इस उपाय के अनुसार

यथाभिमतध्यानाद्वा । (यो०सू० 1/39)

अर्थात् "साधक के लिए जो भी अभीष्ट हो उस के ध्यान से चित्त स्थिरता के प्राप्त करता है।"

महर्षि द्वारा ध्यान का वर्णन अन्यत्र भी अष्टांग योग के अन्तर्गत किया गया है। जिसका सूत्र इस प्रकार है।

तत्र प्रत्ययैकतनता ध्यानम्। (यो०सू० 3/2)

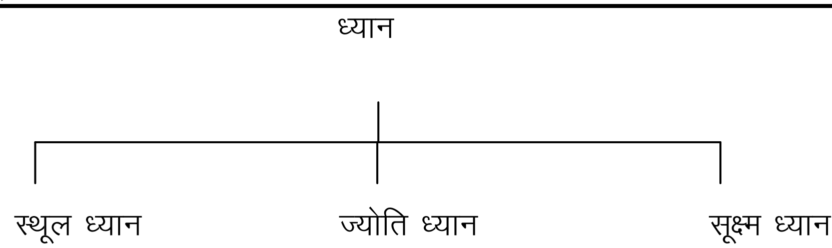
अर्थात् "धारणा किये गये विषय पर एकतानता ही ध्यान है।"

धारणा किस विषय पर की जाये यह ऊपर वाले सूत्र में कह आये हैं, जो अभीष्ट विषय हो उस पर धारणा कर उसकी एकतानता ध्यान में परिवर्तित हो जाती है।

ध्यान को चित्त एकाग्रता का एक अतिव्यवहारिक उपाय माना जाता है। और वर्तमान में मानसिक संतुलन की कारगर चिकित्सा के लिए भी ध्यान का प्रयोग किया जाता है। हालांकि वह ध्यान उस कोटी का नहीं होता जिसका कि हम यहाँ पर वर्णन करेंगे।

ध्यान की अवस्था समपूर्ण मानवीय अभिव्यक्ति को संयम में केन्द्रित कर देती है। ध्यान की अवस्था जीवन में द्वेत से अद्वैत की ओर जाने की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में जीव के भीतर चेतना के रूप में अभिव्यक्त हो रहा आत्मा तत्व अपने मूल परमात्म तत्व से एकाकार होने का तीव्र प्रयत्न करता है, जिसकी उपलब्धि उसे समाधि के रूप में प्राप्त होती है। ऊपर कह आये है, कि साधक को जो भी अभीष्ट हो वह उसका ध्यान कर सकता है। यहाँ अभीष्ट से तात्पर्य है, जिसके प्रति साधक के मन में सर्वाधिक श्रद्धा हो वह गुरु भी हो सकता है। अथवा कोई देव या देवी का स्वरूप भी अथवा अपने माता पिता भी।

जिस विषय के प्रति साधक की अगाध श्रद्धा होगी उस विषय के प्रति उसका चित्त शीघ्र ही एकाग्र हो जायेगा। और एकाग्र हुआ चित्त सत्व के परम आनन्द का अनुभव करता है। श्रद्धा का विषय चाहे जो हो किन्तु फिर भी योगदर्शन की हठयोग प्रणाली में ध्यान को तीन भागों में विभाजित किया गया है। यथा–



आइये अब इन तीनों ध्यान की प्रक्रियाओं को क्रमशः जानते है, तथा इनके व्यवहारिक पक्ष का अवलोकन करते हैं। (इन तीनों ध्यान के प्रकारों का वर्णन घेरण्ड संहिता में आया है, जो एक हठयोग का बहु प्रचलित ग्रन्थ है। यहाँ पर इन तीनों ध्यान की प्रक्रियाओं को संक्षेप में ही बताया जायेगा विस्तृत जानकारी के लिए घेरण्ड संहिता का अध्ययन करें।)

(क) स्थूल ध्यान : घेरण्ड संहिता में महर्षि घेरण्ड ने 6 वें प्रकरण में ध्यान की चर्चा विस्तृत रूप से की है। जहाँ उन्होंने सबसे पहले स्थूल ध्यान का वर्णन किया है, स्थूल ध्यान हेतु भी वहाँ उन्होंने ध्यान के दो आध्यात्मिक शारीरिक स्थलों का चयन किया है। पहला हृदय प्रदेश और दूसर सहस्त्रार चक्र। दो ही स्थान पर महर्षि ने गुरु के स्थूल रूप के ध्यान का उपदेश दिया है। तो आइये संक्षिप्त में इन्हें समझते हैं–

(i) हृदय प्रदेश में ईष्ट का ध्यान : जब साधक के लिए ईष्ट देव अभीष्ट विषय के रूप में हो तब उसे अपने ईष्ट के स्थूल स्वरूप का ध्यान अपने हृदय प्रदेश में करना चाहिए। इसकी प्रक्रिया निम्नवत् है – "अपने हृदय पर ध्यान केन्द्रित करके कल्पना किजिए कि वहाँ एक विशाल अमृत का सागर है, जिसके मध्य में एक द्वीप है, जो दिव्य रत्नों से भरा हुआ है, तथा यह द्वीप कई दिव्य वृक्षों से भरा हुआ है, जिस पर तरह–तरह के फल शोभा पा रहे हैं। द्वीप के चारों दिशाओं में पुष्पों के विशाल समूह दिव्य सुगन्ध को चारों ओर प्रसारित कर रहे हैं। इस द्वीप के एकदम मध्य में एक कल्पवृक्ष है, जिसकी विशाल चार शाखायें चारों वेदों का प्रतिनिधित्व कर रही है, वह वृक्ष सुन्दर फल और फूलों से लदा हुआ है। जिस पर कोयल और भ्रमर मधुर गुंजन कर रहे हैं। उस वृक्ष के नीचे ही एक रत्नों से जड़ित चबूतरा है। जिस पर आपके अभीष्ट ईष्ट देव विराजमान है।" इस प्रकार गुरु के निर्देशानुसार अपने ईष्ट का ध्यान करें। (घेरण्ड संहिता 6/2–8)

(ii) सहस्त्रार चक्र में ईष्ट का ध्यान : सहस्त्रार पर अपने ईष्ट के स्थूल स्वरूप के ध्यान की प्रक्रिया निम्नवत् है– "सहस्त्रार प्रदेश में एक महापद्म (एक हजार पंखुड़ियों वाला कमल का पुष्प) स्थित है, इस पद्म के मध्य में बारह पंखुड़ियों वाला एक छोटा कमल और है। जिसका रंग श्वेत प्रकाश युक्त है, इस उप कमल के दलों पर बीज मंत्र अंकित हैं। तथा कमल के मध्य में तीन रेखाओं से युक्त त्रिभुज की आकृति है। इस त्रिभुज के मध्य में ओ3म अंकित है। सहस्त्रार कमल के मध्य में दो हंसों के जोड़े के रूप में आपके ईष्ट के चरण विराजमान हैं। आपके ईष्ट की दो भुजायें तथा तीन नेत्र हैं, उन्होंने श्वेत वस्त्र और श्वेत पुष्पों से गुंथी माला धारण की हुई है, तथा उनके वामभाग में रक्त वर्ण युक्त वस्त्रों को धारण कर उनकी शक्ति सुशोभित हो रही है।" (घेरण्ड संहिता 6/9–15) इस प्रकार अपने ईष्ट का ध्यान करें।

यहाँ पर सम्भवतः भगवान शिव और उनकी शक्ति मां पार्वती का वर्णन महर्षि घेरण्ड ने किया है। चूकिं शिव और शक्ति का योग ही योगदर्शन का परम उद्देश्य है। और इसी को योग के रूप में भी परिभाषित किया जाता है।

(ख) ज्योतिध्यान : स्थूल ध्यान के पश्चात् महर्षि घेरण्ड ने ज्योति ध्यान पर चर्चा प्रस्तुत कि है। ज्योति ध्यान के लिए भी महर्षि घेरण्ड ने दो स्थानों का चुनाव किया है। पहला मूलाधार और दूसरा भ्रुमध्य (आज्ञाचक्र)। तो चलिए इन्हें क्रमशः समझते है –

(i) मूलाधार पर ज्योति ध्यान : "मूलाधार में सर्पाकार कुण्डलिनी विराजित है, और यहीं दीपक की लौ के समान जीवात्मा स्थित है। इस स्थान पर तेजोमय परात्पर ब्रह्म का ध्यान करना ही ज्योति ध्यान है।" (घे०सं० 6/16)

(ii) आज्ञा चक्र पर ज्योति ध्यान : "भैहो (आज्ञा चक्र) के मध्य में और मन के ऊर्ध्व भाग में जो प्रणवात्मक ज्योति है। उस ज्वाला युक्त ज्योति का ध्यान ही ज्योति ध्यान है।" (घे०सं० 6/17)

(ग) सूक्ष्म ध्यान : महर्षि घेरण्ड द्वारा वर्णित सूक्ष्म ध्यान कुण्डलिनी जागरण की प्रक्रिया का ही ध्यान है, यह प्रक्रिया निम्नवत् है। "ज्यों हि कुण्डलिनी जाग्रत होती है, वह आत्म तत्व के साथ संयुक्त होकर नेत्र रन्ध्र से निकलते हुए ऊर्ध्व भाग में स्थित राजमार्ग नामक स्थान में विचरण करती है, किन्तु सूक्ष्म और चंचल होने के कारण दृष्ट नहीं होती। अतः साधक शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास करता हुआ कुण्डलिनी के स्वरूप का ध्यान करे यही सूक्ष्म ध्यान है।" (घे०सं० 6/18–22)

महर्षि घेरण्ड ने सूक्ष्म ध्यान को सबसे अधिक महत्वपूर्ण व देव दुर्लभ कहा है, उनके अनुसार स्थूल ध्यान से ज्योति ध्यान सौ गुना और ज्योति ध्यान से सूक्ष्म ध्यान लाख गुना श्रेष्ठ है।

इस प्रकार योग साधक अपने अभीष्टतम् लक्ष्य को आधार बनाकर जब ध्यान करता है, तब उसका चित्त सभी वृत्तियों से निवृत्त होकर शान्त और निस्तरंग हो जाता है। यह निस्तरंग चित्त अन्ततः असम्प्रज्ञात समाधि का आनंद प्राप्त करता है।

अभ्यास प्रश्न भाग–10

1. लघुउत्तरीय प्रश्न

   (क) ध्यान की परिभाषा लिखिए।

   (ख) योग सूत्र में ध्यान के कितने प्रकारों का वर्णन किया गया है? नामोल्लेख करें।

   (ग) अभीष्ट विषय से क्या तात्पर्य है?

2. एक शब्द में उत्तर दें –

   (क) स्थूल ध्यान का वर्णन घेरण्ड संहिता के किस प्रकरण में आया है?

   (ख) मूलाधार व आज्ञा चक्र का वर्णन किस प्रकार के ध्यान में आता है?

(ग) कुण्डलिनी जागरण की प्रक्रिया पर ध्यान करना किस प्रकार का ध्यान है?

4.4 सारांश :

चित्त वृत्तियों के निरोध के उपाय से सम्बन्धित इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप वृत्ति निरोध के उपायों के ज्ञान को विस्तार से जान चुके होंगे, तथा इन उपायों के व्यवहारिक पक्ष को भी समझ चुके होंगे। महर्षि पतंजलि ने जिन प्रमुख उपायों की चर्चा योगसूत्र में कि है, उन सभी का प्रायः यहाँ वर्णन किया जा चुका है। हालांकि विद्वान क्रियायोग और अष्टांगयोग को भी वृत्ति निरोध के उपायों के अन्तर्गत् मानते हैं, किन्तु इन दोनों उपायों को पाठ्यक्रम के अन्य भाग में बताया जायेगा। यहाँ बताये गये उपायों में जिस उपाय को विद्वान श्रेष्ठतम् स्वीकार करते है, वह है, अभ्यास और वैराग्य का। इन दोनों उपायों को एक दूसरे का पूरक भी कहा जाता है। अर्थात् एक के किये जाने पर दूसरे को किया जाना स्वाभाविक हो जाता है। किन्तु विस्तार की दृष्टि से यहाँ इन्हें अलग–अलग समझाया गया है। अभ्यास प्रत्येक वृत्ति निरोध के लिए आवश्यक तत्व है। और वैराग्य किसी भी निरोध उपाय के पश्चात् उत्पन्न होने वाली एक स्वाभाविक अवस्था है, जिसकी परिणति असम्प्रज्ञात समाधि में होती है। अभ्यास और वैराग्य से इतर ईश्वर प्रणिधान एक अलग एवं महत्वपूर्ण वृत्ति निरोध का उपाय है। इसे भक्तियोग की विकल्प विशेष संज्ञा से सम्बोधित किया जाता है। इसके बाद का उपाय सामाजिक समरसता से आप्लावित भावना चतुष्टय महर्षि पतंजलि का समाजशास्त्रीय अध्ययन है, जो योग साधक के साथ साथ एक सामान्य जन के लिए भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। वृत्ति निरोध के साधनों में एक उपाय जो शारीरिक और मानिसिक स्तर दोनों पर आधारित है। वह प्राणायाम आधात्मिक उन्नति का भी सोपान हो सकता है। इस बात को महर्षि पतंजलि ने अपने सूत्रों में स्पष्ट किया है। प्राणायाम के इस पहलू को ही हमने यहाँ चर्चा का मुख्य विषय बनाया है। प्राणायाम के बाद के दोनों उपाय प्रवृत्ति विशेष होने के कारण पूर्णतः मानसिक आयाम पर आश्रित है। विषयवती व ज्योतिष्मती दोनों प्रवृत्तियाँ सात्विक वृत्ति होने से सम्प्रज्ञात के लाभ का हेतु बनती है। इन प्रवृत्तियों के पश्चात् के उपाय में श्रेष्ठ योगीयों के चित्त के प्रकाश के आलोक से साधक अपने चित्त को भी आलोकित कर सके इस तथ्य पर विचार किया गया है। जो स्वभाव से आदर्श को अपनाने वाली बात लगती है। इसके बाद जिस उपाय पर चर्चा की गयी है, उसे चित्त वृत्तियों की अवधारण वाले भाग में समझाया गया है। यहाँ स्वप्न व निद्रा के सात्विक पक्ष की धारणा का फल चित्त निर्मलता बताया गया है। और अंत के उपाय को हम समाधि के सबसे निकटतम साधनों में पाते है, जब साधक अपनी क्षमतानुसार अपने ईष्ट देव के प्रति आदर, श्रद्धा, समर्पण के भाव से पूरित उसके स्वरूप को तदाकार करता है और अंततः तदाकार करता है। और अंततः तदाकार के भाव से पूरित होकर स्वयं भी वही होने की अवस्था को प्राप्त कर लेता है। तब वह वेदान्त के अनुसार "अहं ब्रह्मास्मि' का वास्तविक दृष्टा हो जाता है। और साधक का यही भाव द्योतक है, कि अब उसका चित्त पूर्णतः वृत्तियों से मुक्त हो चुका है और यही योगदर्शन के इन वृत्ति निरोध के उपायों का लक्ष्य भी है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इन उपायों के व्यवहारिक पक्ष से अवगत होने के साथ–साथ उनके क्रियान्वयन की प्रक्रिया को भी भलिभांति जान गये होगें और यही हमारा लक्ष्य भी था। अब इस चर्चा को यहाँ समाप्त करते है और आशा करते है कि आप विषय

को भलि प्रकार से समझ गये होगें और उक्त विषय पर इस जानकारी से अतिरिक्त जानकारी का संकलन भी अवश्य करेगें।

4.5 पारिभाषिक शब्दावली :

1.	अनुष्ठान	–	धार्मिक कार्य
2.	ऐहिक	–	सांसारिक
3.	अवशिष्ट	–	बचा हुआ
4.	अव्यक्त	–	जो बताया न जा सके
5.	परिकर्म	–	पूर्व कर्म या सहायक कार्य
6.	निस्तरंग	–	बिना किसी हलचल के या तरंगहीन
7.	नैसर्गिक	–	स्वभाविक

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर :

(उत्तर) अभ्यास प्रश्न भाग–1

1. (क) योग साधकों की तीन श्रेणीयाँ है।
   (1) उत्तम (2) मध्यम (3) अधम
   (ख) उत्तम श्रेणी के साधक पूर्वजन्म से ही योग मार्ग पर बहुत आगे निकल चुके होते हैं। और वर्तमान में पूर्वजन्म में छोड़ी गयी योग साधना को लक्ष्य तक पहुँचाने के लिए प्रयत्न करते हैं।
   (ग) सम्पूर्ण चित्त वृत्तियों का निरोध ही योग का अंतिम लक्ष्य है।

(उत्तर) अभ्यास प्रश्न भाग–2

1. (क) अभ्यास, वैराग्य (ख) अभ्यास (ग) धैर्य
2. (क) महत्सेवा (ख) तप (ग) स्थिरता

(उत्तर) अभ्यास प्रश्न भाग–3

1. (क) सत्य (ख) सत्य (ग) असत्य
2. (क) वशीकार (ख) असम्प्रज्ञात

(उत्तर) अभ्यास प्रश्न भाग–4

1. (क) क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से मुक्त पुरुष विशेष ही ईश्वर है।
   (ख) क्रिया योग के अंग – तप, स्वाध्याय व ईश्वर प्रणिधान हैं।
   (ग) ईश्वर प्रणिधान से तात्पर्य भक्तियोग है।
2. (क) नियम (ख) प्रणव (ग) ईश्वर।

(उत्तर) अभ्यास प्रश्न भाग–5

1. (क) प्रसन्न (ख) अमर्ष (ग) ईर्ष्या
2. (क) असत्य (ख) सत्य (ग) सत्य

(उत्तर) अभ्यास प्रश्न भाग–6

1. (क) प्राणायाम के चार प्रकार है –
   (i) बाह्य वृत्ति प्राणायाम
   (ii) आभ्यन्तर वृत्ति प्राणायाम
   (iii) स्तम्भ वृत्ति प्राणायाम
   (iv) बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी प्राणायाम

   (ख) श्वास प्रश्वास की गति का विच्छेद करना ही प्राणायाम है।

2. (क) अभ्यान्तर वृत्ति
   (ख) विज्ञान भिक्षु
   (ग) देश

(उत्तर) अभ्यास प्रश्न भाग–7

1. (क) शब्द (ख) दिव्य स्पर्श
2. (क) असत्य (ख) असत्य (ग) सत्य

(उत्तर) अभ्यास प्रश्न भाग–8

1. (क) दो (ख) आकाश (ग) शोक रहित और प्रकाशवान।
2. (क) वाचस्पति मिश्र (ख) निस्तरंग समुद्र (ग) हृदय कमल पर

(उत्तर) अभ्यास प्रश्न भाग–9

1. (क) सत्य (ख) सत्य (ग) सत्य

(उत्तर) अभ्यास प्रश्न भाग –10

1. (क) तम (ख) सात्विक स्थान (ग) ज्ञान

(उत्तर) अभ्यास प्रश्न भाग –11

1. (क) धारणा किये गये विषय पर एकतानता ही ध्यान है।

   (ख) ध्यान के तीन प्रकारों का वर्णन किया गया है।

   (1)स्थूल (2) ज्योति (3) सूक्ष्म

   (ग) जिस विषय के प्रति साधक के मन में सर्वाधिक श्रद्धा हो वह विषय आभीष्ट विषय होता है।

2. (क) छठे प्रकरण में

   (ख) ज्योति ध्यान

   (ग) सूक्ष्म ध्यान

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. श्री वास्तव, डॉ॰ सुरेशचन्द्र,(2008) पातंजलयोग दर्शनम्, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
2. मिश्र, डॉ॰ जगदीशचन्द्र, (2008) भारतीय दर्शन, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
3. दासगुप्त, सुरेन्द्रनाथ (2008) भारतीय दर्शन का इतिहास भाग–1 अनु॰ कलानाथ शास्त्री व सुधीर कुमार, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
4. तीर्थ, स्वामी ओमानंद, (सम्वत्–2054), पातंजल योग प्रदीप, गीता प्रेस, गोरखपुर

4.8 सहायक/उपयोगी पाठय सामग्री :

1. योगभ्यास का मूलाधार, लेखक – स्वामी शिवानंद, प्रकाशक – दिव्य जीवन संघ प्रकाशन
2. योगदर्शन, लेखक– परमहंस निरंजनानंद, प्रकाशक – श्री पंचदशनाम परमहंस अलखबाड़ा, बिहार
3. कल्याण का योगांक, प्रकाशक – गीताप्रेस गोरखपुर
4. विवेकानंद साहित्य, भाग 3 व 4, प्रकाशक – अद्वैत आश्रम, कोलकत्ता
5. योग मीमांसा, त्रैमासिक शोध पत्रिका, प्रकाशक – कैवल्य धाम लोनावला, महाराष्ट्र
6. http://hinduebooks.blogspot.com
7. http://www.hindudharmaforums.com
8. http://sanskritdocuments.org
9. http://archive.org

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न :

प्रश्न 1. चित्त वृत्ति निरोध के उपायों से आप क्या समझते हैं स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 2. अभ्यास एवं वैराग्य का विस्तार से वर्णन कीजिए।

प्रश्न 3. ईश्वर प्रणिधान किस प्रकार चित्त वृत्ति निरोध में सहायक है स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 4. भावना चतुष्टय एवं प्राणायाम का भेदों सहित वर्णन कीजिए।

प्रश्न 5. विषयवती एवं ज्योतिष्मती प्रवृत्ति का साधक के चित्त पर क्या प्रभाव पड़ता है स्पष्ट करें।

प्रश्न 6. वीतराग विषय चित्त तथा स्वप्ननिद्राज्ञानावलम्बन चित्त वृत्तियों का निरोध करने में किस प्रकार सहायक हैं। स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 7. यथाभिमत ध्यान क्या है? विस्तार से व्याख्या कीजिए।